GANDHISM
IN HINDI LITERATURE

B.A.HINDI
IV Semester
Complementary Course

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION
UNIVERSITY OF CALICUT

1028

CALICUT UNIVERSITY

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

Study Material

B.A.HINDI

IV Semester

Second Complementary Course

GANDHISM IN HINDI LITERATURE

Prepared By:

Dr.PRAMOD KOVVAPPARATH
Professor, Hindi Department
University of Calicut
Malappuram

Settings & Lay Out By: SDE Computer Cell

Contents

Module I	**Gandhi Chintan**
Module II	**Autobiography- Satya Ke Prayog**
Module III	**Essays**
Module IV	**Poems from Gandhi Kavyayan**

MODULE-I

Gandhi Chintan

1. सत्य क्या है?

सत्य की खोज केलिए अपनी पूरी जीवनगाथा को समर्पित करनेवाले हैं महात्मा गाँधी। प्रस्तुत लेख में गाँधीजी सत्य-संबंधी अवधारणाओं को तार्किक रूप से व्यक्त करते हैं। अनादिकाल से पुराणों में, इतिहास में, विभिन्न धर्मों में सत्य को परिभाषित करने का प्रयास करते आये हैं। हरिश्चन्द्र, इमाम हसन, हुसेन आदि इसके उदाहरण हैं। गाँधीजी की राय में इन सीमित सत्यों से परे एक चरम सत्य है, जो समग्र और सर्वव्यापी है। वे मानते हैं कि परमेश्वर ही इस दुनिया का चरम सत्य है, बाकी सब मिथ्या और असत्य हैं। इसलिए दूसरी सब चीज़े सापेक्ष भाव में ही सत्य हो सकती है। तीनों कालों में सिर्फ ईश्वर ही एक रूप में अपना अस्तित्व रखता है। अतः मन, वचन और कर्म से सत्य का आचरण करनेवाले ही ईश्वर को पहचानता है। वह त्रिकालदर्शी हो जाता है, उसे मोक्ष की सिद्धि भी हो जाती है।

'सत्य' शब्द 'सत्' से बना है, जिसका अर्थ है 'अस्ति' या होना। गाँधीजी का मत है कि जो आदमी इस सत्य के प्रति प्रेम और निष्ठा द्वारा इसे अपने हृदय में सदा केलिए स्थापित करने में सफलता प्राप्त करते हैं, वे सबसे वंदनीय है। सत्य की भावना से ओतप्रोत जीवन स्फटिक की भाँति पारदर्शी और शुद्ध होना चाहिए। ऐसे व्यक्ति की उपस्थिति में असत्य एक क्षण केलिए भी नहीं टिक सकता। लेकिन एक सच्चाई यह भी है कि हममें से कुछ तो सिर्फ सत्याग्रही है। क्योंकि सत्य के व्रत का पालन करना आसान नहीं है। जो लोग सत्य के मार्ग पर ईमानदारी से चलना चाहते हैं, लेकिन वाणी के सीमित क्षेत्र में भी उन्हें मुश्किल से सफलता मिलती है।

गाँधीजी को याद नहीं आता कि उन्होंने कभी अपने जीवन में किसी समय जान-बूझकर झूठ बोला हो। एक बार ज़रूर ऐसा हुआ, जबकि उन्होंने अपने पूज्य पिताजी को धोखा दिया। जब कोई गाँधीजी के सामने झूठ बोलता है तो उन्हें उस आदमी से ज़्यादा अपने से गुस्सा होता है, क्योंकि तब वे अनुभव करते हैं कि उनके अंदर कहीं-न-कहीं झूठ अब भी विद्यमान है। कभी-कभी यह भी महसूस करते हैं कि वे अब भी उस परम सत्य से बहुत दूर है। वे कहते हैं- "ज्यों-ज्यों मैं उसकी ओर बढ़ता हूँ, मुझे अपनी कमियाँ कहीं ज़्यादा साफ़ दिखाई देने लगती है। और यह ज्ञान मुझे विनम्र बनाता है। कहने का तात्पर्य है कि अपनी नगण्यता को जाननेवाला आदमी का गर्व चूर हो जाता है।

सत्य का रास्ता शूरवीरों का है, कायर को उस पर नहीं चलना चाहिए। जो व्यक्ति अपनी लौकिक सुख-सुविधाओं को त्यागकर चौबीस घण्टे सत्य का चिन्तन करने का प्रयत्न करता है, उसकी संपूर्ण आत्मा सत्य से अवश्य ओतप्रोत होगी। सत्य बिना प्रेम के टिक नहीं सकता। सत्य में अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय तथा दूसरे व्रत शामिल है। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश को बताने की आवश्यकता नहीं होती है, उसी प्रकार सत्य अपने ही प्रकाश से चमकता है। वह स्वयं सिद्ध है। सत्य को जानकर हिंसा करनेवाला सत्य से गिर जाता है।

गाँधीजी यह बात स्वीकार करते हैं कि इन बुरे दिनों में सत्य पर पूरी तरह आचरण करना कठिन है, लेकिन असंभव नहीं। अगर हममें से बहुत बडी संख्या में लोग कुछ हद तक भी उसपर आचरण करने की कोशिश करें तो हमें स्वराज्य मिल सकता है। यदि हम रुपए में आना भर भी सत्य का आचरण करें तो भी कोई बात नहीं, लेकिन वह होना चाहिए सत्य ही, और कुछ नहीं। इस प्रकार सत्य के पथ पर चलते हुए सत्य केलिए मेरे व्यक्ति गाँधीजी के सिवा और कोई हो नहीं सकती।

2. अहिंसा

अहिंसा शब्द को हम कभी गाँधीजी से अलग करके देख नहीं सकते। क्योंकि सत्य और न्याय की लड़ाई में, स्वतंत्रता की महत्वाकांक्षा में गाँधीजी का केवल एक ही हथियार था-अहिंसा। अहिंसा के संबंध में विभिन्न विद्वानों में मतभेद है।

गाँधीजी के शब्दों में निषेधात्मक रूप में अहिंसा का अर्थ होता है, किसी जीवित प्राणी को शरीर या मन से पीड़ा न पहूँचाना। इसलिए अहिंसा किसी दुष्कर्म करनेवाले के शरीर को चोट नहीं पहुँचा सकती, न उसके प्रति दुर्भावना रखकर उसे मानसिक पीड़ा पहुँचा सकती है। लेकिन बात यह भी है कि कोई गलत काम देखकर एक व्यक्ति अपनी स्वाभाविक क्रियाओं से उसका प्रतिरोध करें तो हम उसे अहिंसा-विरोधी भी कह नहीं सकते।

भावनात्मक रूप में अहिंसा का अर्थ होता है, प्रेम और उदारता की पराकाष्ठा। यदि हम अहिंसा के पूजारी हैं तो हमें अपने शत्रु को प्यार करना चाहिए। उसे अपने ही परिवार का आदमी मानना चाहिए। इस सक्रिय अहिंसा में सत्य और अभय अनिवार्य रूप में आ जाते हैं। क्योंकि कोई भी मनुष्य अपने प्रियजनों को धोखा नहीं दे सकता। वह उनसे डरते या डराते नहीं है। गाँधीजी मानते हैं कि जीवन-दान सारे दानों में सबसे बड़ा है। जो व्यक्ति वास्तव में जीवन की भेंट देता है, वह सारी शत्रुता को निरस्त्र कर देता है। वह सम्मानपूर्ण समझौता का रास्ता खोल देता है। और जो मनुष्य स्वयं भय का शिकार है, वह इस भेंट को देने में असमर्थ है। इसलिए उसे स्वयं निर्भय होना चाहिए। ऐसी दशा में यह नहीं हो सकता कि मनुष्य अहिंसा की साधना करे, साथ ही कायर भी हो। अहिंसा के पालन केलिए अधिकतम साहस की आवश्यकता होती है।

गाँधीजी के विचार में अहिंसा के साधक सिपाही के समान होते हैं। सच्चा सिपाही तो वह है, जो मरना जानता है और गोलियों की बौछार के बीच भी अविचल रहता है। दुर्वासा के प्रति सधैर्य खडे रहने केलिए अम्बरीष का साहस, फ्रांसीसी तोपचियों के सामने मरने केलिए भी तैयार मूरों का साहस इसके ही प्रमाण है। गाँधीजी ने अपने आँखों सामने देखा है कि दक्षिण अफ़्रीकी अपना ईमान बेचने की अपेक्षा हज़ारों की संख्या में मरने को तैयार थे। यह थी सक्रिय रूप में अहिंसा। अहिंसा कभी सम्मान का सौदा नहीं करती।

श्री. लाल लजपत राय ने गाँधीजी की अहिंसा के संबंध में लिखा है कि अहिंसा के सिद्धांत की अति के कारण भारत का अधःपतन हुआ। लेकिन गाँधीजी इसका खण्डन करते हुए कहते हैं कि एक राष्ट्र के रूप में इतने सालों से हमने शारीरिक साहस के पर्याप्त प्रमाण दिये हैं, लेकिन भीतरी झगड़ों ने हमें फूट डाली और देशप्रेम की जगह हमारा स्वार्थ अधिक प्रबल रहा।

असीसी के सन्त फ्रांसीस के अनुभव के प्रकाश में गाँधीजी यह भरोसा दिलाते हैं कि अहिंसा का आचरण करनेवाला व्यक्ति अपने आसपास के वातावरण को ऐसा प्रभावित करता है कि सर्प तथा अन्य विषैले जन्तु भी उसे हानि नहीं पहुँचाते। गाँधीजी इस बात पर आभार व्यक्त करते हैं कि उनके अहिंसा संबंधी विचार में संसार के अधिकांश धर्मों से सहायता मिली है। महावीर, बुद्ध, टालस्टाय आदि को गाँधीजी अहिंसा के सच्चे सिपाही मानते हैं।

गाँधीजी की राय में यदि आज हममे पुरुषत्व का अभाव है तो वह इसलिए नहीं कि हम वार करना नहीं जानते, बल्कि इसलिए कि हम मरने से डरते हैं। अतः अहिंसा का अर्थ जान-बूझकर स्वयं कष्ट भोगना होता है; जिसे हम अत्याचारी मानते हैं, उसे जान-बूझकर कष्ट पहूँचाना नहीं।

3. शान्तिवाद तथा अहिंसात्मक प्रतिरोध

भारत तथा अन्य देशों की स्वतंत्रता की लड़ाई में युद्ध और अहिंसा किस प्रकार भलाई बुराई का काम करता है, इस प्रसंग में प्रस्तुत लेख बहुत विचारणीय है। एक आचार्य के शब्दों को उधार लेते हुए गाँधीजी हमें यह सोचने केलिए मज़बूर करते हैं कि कैसी भी परिस्थिति में हिंसा का सहारा लेने से इन्कार करके युद्ध के विरोध का शपथ लेना हमारी दुनिया के मौजूदा हालात में सही और व्यावहारिक कदम है?

इसके पक्ष में कई तर्क प्रस्तुत कर सकते हैं। पहले संसार के बडे-बडे आचार्यों ने अपने जीवन को चरितार्थ करके दिखाया है कि किसी बुरी चीज़ का अन्त अच्छे साधनों से ही किया जा सकता है, इसलिए हिंसा हमेशा गलत है। वर्तमान हिंसा और दुर्दशा के वास्तविक कारणों को युद्ध द्वारा दूर नहीं किया जा सकता, इसलिए यह अव्यावहारिक भी है। दूसरे, युद्ध के फलस्वरूप, उसमें विजय किसी की भी क्यों न हो, जिस विचार में बंधे समाज का उदय होगा, उस समाज में एक मोहरे की भाँति रहने की अपेक्षा दमन का अन्तःकरण से अहिंसात्मक प्रतिरोध करते हुए मर जाना कहीं श्रेयस्कर है।

इसके विपक्ष में दिए गए तर्कों की भी सावधानी से परीक्षा करना आवश्यक है कि फासिस्टवाद के विरुद्ध अहिंसात्मक प्रतिरोध केलिए कोई गुंजाइश ही नहीं है। फासिस्टवादी लोग मानवतावादी अहिंसात्मक प्रतिरोध को समाप्त करने में किसी भी अंश में पाशविकता से काम ले सकते हैं। लोकतंत्रात्मक स्वाधीनता की रक्षा केलिए लामबन्दी की लडाई में सेनापति बनने से इन्कार करना उन लोगों की सहायता करने के समान हैं जो उस स्वाधीनता को नष्ट कर रहे हैं। दूसरा तर्क यह भी है कि युद्ध भले ही स्वाधीनता को नष्ट कर दे, लेकिन यदि लोकतन्त्र बचा रहता है तो स्वाधीनता को पुनःप्राप्त कर लेने की कम-से कम थोडी बहुत संभावना तो बनी रहती है। इसके विपरीत, यदि फासिस्टों को दुनिया पर शासन करने की छूट दे दी जाती है तो इसकेलिए तनिक भी गुंजाइश नहीं रहती।

इन दोनों पक्ष-विपक्ष के तर्कों पर विचार करते हुए गाँधीजी यह निष्कर्ष निकालते हैं कि शान्तिवादियों को ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए, जिससे उनकी सरकारें कमज़ोर पड़े और पराजित हो जाएँ। लेकिन ऐसे करने के भय से उन्हें समस्त युद्ध की निरर्थकता में अपने अटूट विश्वास को प्रदर्शित करने केलिए एकमात्र प्रभावशाली अवसर को नहीं खोना चाहिए। शान्तिवादी को

प्रतिरोध अवश्य करना चाहिए, यदि वह दृढ़ता से यह अनुभव करता है कि तथाकथित लोकतंत्र जीवित रहे या मर जाय, रस्साकशी से युद्ध का कभी अन्त नहीं होगा और ऐसा तभी होगा जबकि संकट की घड़ी में शान्तिवादियों का एक समुदाय कठोरतम दण्ड भुगत कर किसी भी दशा में अपनी जीवित श्रद्ध को कसौटी पर चढ़ा कर दिखा दे।

जहाँ निष्ठा का बहुत ही परेशान करनेवाला, पर शक्तिशाली कारण किसी के आचरण का अंग होता है, वहाँ मानवीय गणित काम नहीं देता। सच्चा शान्तिवादी सच्चा सत्याग्रही होता है। सत्याग्रही विश्वास के आधार पर काम करता है और इसलिए फल की चिन्ता नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि जब उसका कार्य सही है, तो फल मिलेगा ही।

गाँधीजी की दृष्टि में सच्चा लोकतंत्रवादी वह है जो पवित्र अहिंसात्मक साधनों से अपनी और इसलिए अपनी देश की, अंततोगत्वा सारी मानव-जातित की स्वाधीनता की रक्षा करता है। प्रतिरोध के कर्तव्य के अधिकारी वही व्यक्ति होते हैं, जो अहिंसा में धर्म के रूप में विश्वास करते हैं, वे लोग नहीं, जो हर मामले के गुण-दोष का हिसाब लगाते हैं, जांचते हैं और निश्चय करते हैं कि आया किसी युद्ध विशेष का उन्हें समर्थन करना चाहिए या विरोध। इससे नतीजा यह निकलता है कि इस प्रकार के प्रतिरोध के विषय में प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं तथा अन्तर की आवाज़ को सुनकर, यदि वह उसके अस्तित्व को स्वीकार करता है, निर्णय करना चाहिए।

4. सत्याग्रह का जन्म

प्रस्तुत लेख दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास का ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में गाँधीजी हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। 11 दिसंबर, 1906 को जोहन्सबर्ग में भारतीयों की जो सार्वजनिक सभा हुई वह दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास में एक स्मरणीय घटना थी। उसका आयोजन सरकार के एशियाई अधिनियम संशोधन अध्यादेश का विरोध करने केलिए किया गया था। इस सभा के प्रस्ताव विशेष रूप से इस बात केलिए उल्लेख-योग्य थे कि उनसे अनुचित कानूनों के विरुद्ध अहिंसक सीधी कार्रवाही का उसके फलितार्थ सहित श्रीगणेश होता था। चौथा प्रस्ताव में कहा गया था- "यदि विधान परिषद्, स्थानीय सरकार तथा सम्राट के अधिकारियों ने एशियाई अधिनियम संशोधन अध्यादेश के संशेध में ट्रांसवाल के भारतीय समाज की विनम्र प्रार्थना को ठुकरा दिया तो यहाँ उपस्थित ब्रिटीश भारतीयों की यह सार्वजनिक सभा बडी गंभीरता तथा दुःख के साथ निश्चय करती है कि उपरोक्त अधिनियम में रखी गई पीड़ाजनक, निर्दय तथा अब्रिटीश आवश्यकताओं के आगे झुकने की अपेक्षा ट्रांसवाल का प्रत्येक ब्रिटीश भारतीय जेल का आवाहन करेगा और उस समय तक करता रहेगा जब तक कि सम्राट राहत न पहूँचाएँ।"

गाँधीजी ने एक ऐतिहासिक व्याख्यान में इस प्रस्ताव को समझाया। बाद में उन्होंने अपनी पुस्तक 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास में उसका सारांश प्रस्तुत किया। गाँधीजी ने इस प्रस्ताव को इतनी गंभीरता से सभा के सामने रखा क्योंकि उन्हें पूरा विश्वास था कि दक्षिण अफ्रीका में हमारा अस्तित्व इस प्रस्ताव पर पूर्णतया अमल करने पर निर्भर करता है। इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का श्रेय वे सेठ हाजी हबीब को देते हैं।

गाँधीजी वहाँ के लोगों को चेतावनी देते हैं कि जो लोग शपथ लेंगे, वही उससे बंध सकेंगे। ऐसी शपथ बाहर के लोगों पर प्रभाव डालने केलिए कदापि नहीं लेनी चाहिए। उसका प्रभाव यहाँ

की सरकार, साम्राज्य की सरकार या भारत सरकार पर क्या पडेगा, इसका विचार करने का कष्ट किसी को भी नहीं उठाना चाहिए। हर आदमी अपने ही हृदय को टटोले और यदि उसकी अन्तरात्मा उसे भरोसा दिलावे कि उसमें शपथ लेने की अपेक्षित शक्ति है, तभी वह शपथ ले और तभी शपथ फलदायक होगी।

गाँधीजी वहाँ उपस्थित लोगों को भरोसा दिलाते हैं कि-"हम जितने कष्टों की कल्पना कर सकते हैं, वे सब हमें भोगने पड़ें, यह असंभव नहीं है और बुद्धिमानी इसी में है कि हम यह मानकर ही शपथ लें कि ये सारे कष्ट और इससे भी अधिक हमें भोगने ही होंगे।

एक सच्चे नेता के गुणों का, उसकी सुदृढ़ता का परिचय गाँधीजी के इन शब्दों में व्यक्त है- "यदि मुट्ठी भर लोग ही अन्तिम परीक्षा का सामना करने केलिए रह जाएँ, फिर भी मुझ जैसे व्यक्ति केलिए तो एक ही रास्ता होगा और वह यह है कि मर जाएँ पर कानून के आगे सिर न झुकावें।

गाँधीजी की यह प्रतिज्ञा पूरी ज़िन्दगी केलिए भी उतना महत्वपूर्ण है कि हरेक को अपनी जिम्मेदारी को पूरी तरह समझकर स्वतंत्र रूप से प्रतिज्ञा लेनी चाहिए और यह जान लेना चाहिए कि दूसरे कुछ भी करें, पर वे मरते दम तक अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेंगे।

5. हिंदू- मुस्लिम एकता व्रत

भारत की ऐसी एक विराट संस्कृति है जो सर्वधर्म-समावेशी है। भारत के संविधान में धर्म-निरपेक्षता की बात की गयी है, जिसके अनुसार सभी धर्मों को समान भाव से आदर करें। लेकिन इतिहास गवाह है कि भारत में यह बात कागज़ की रह गयी है और विभिन्न धर्मों के बीच हमेशा टकराव चलता रहता है। सबसे बडा टकराव चलता है-हिंदु और मुस्लिम के बीच। राष्ट्रपिता गाँधीजी का आदी से अंत तक एक ही आशा रही कि हिंदू-मुस्लिम के बीच एकता स्थापित हो जाए।

प्रस्तुत लेख में गाँधीजी हिंदू-मुस्लिम एकता व्रत लेने केलिए हमें प्रेरणा देते हैं। गाँधीजी के अनुसार साधारण संयम से जो काम संभव नहीं होते, वे व्रतों की सहायता से जिनकेलिए असामान्य संयम ज़रूरी होता है, संभव हो जाते हैं। इसलिए ही वे 'एकता-व्रत' की बात करते हैं। गाँधीजी की आशा है कि यदि हिंदु-मुसलमान जातियाँ आपस में मित्रता के सूत्र में बाँधी जा सकें और यदि एक का दूसरे के प्रति ऐसा व्यवहार हो, जैसा माँ-जाये भाईयों का होता है तो वह स्पृहणीय सिद्ध होगी।

लेकिन इस एकता के चरितार्थ होने से पहले दोनों जातियों को भारी त्याग और अब तक के विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन करना होगा। उनमें से जब एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों से बात करते हैं तो कभी-कभी इतनी अशिष्ट शब्दावली का प्रयोग करते हैं, जो दोनों के बीच के संबंधों को कटु बना देती है। बहुतों का विश्वास है कि हिंदू और मुसलमानों के रक्त में बैर समाया हुआ है और उसे दूर नहीं किया जा सकता। गोवध के मामले में गाँधीजी करनेवाले को मार देने के बजाय वे उसका सहन नहीं करते हैं तो थोडे भी प्रबुद्ध हिंदू अपना बलिदान करेंगे तो

मुसलमान भाई नहीं। लेकिन यहाँ सत्याग्रह और न्याय की आवश्यकता है। उन्हें अपने भाई के समान प्रेम करना चाहिए।

गाँधीजी मानते हैं कि जब हिंदुओं में इस प्रकार से पवित्र प्रेम की भावना का स्फुरण होगा तभी हिंदू-मुस्लिम एकता की आशा की जा सकती है। जो बात हिंदुओं पर लागू होती है, वही बात मुसलमानों पर भी लागू होती है। मुसलमानों के नेताओं को चाहिए कि वे आपस में मिलें और सोचें कि हिंदुओं के प्रति उनका कर्तव्य क्या है? जब दोनों त्याग की भावना से प्रेरित होंगे, जब अपने अधिकारों केलिए दबाव डालने की अपेक्षा वे एक-दूसरे के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने का प्रयत्न करेंगे तभी दोनों जमातों के बीच दीर्घकाल से चले आ रहे भेद-भाव दूर होंगे। एक-दूसरे धर्म के बीच आदर का भाव हमारे बीच के भेदभाव को मिटा सकता है। हमारा व्रत का तभी मूल्य होगा जबकि हिंदु और मुसलमान बहुत बडी संख्या में इस प्रयत्न में सम्मिलित होंगे।

Module-II

Autobiography

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

'सत्य के प्रयोग' हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी की आत्मकथा है, जिसमें गाँधी के जीवन के वैविध्यपूर्ण अनुभव भरे पडे हैं। यह आत्मकथा अपने आप में अनूठी है। जिसप्रकार गाँधीजी मूल्यों और आदर्शों को पकडते हुए अपने सत्य एवं अहिंसा के मार्ग पर अटल रहे, यह प्रमाण हमें आत्मकथा से मिलता है। पूरी दुनिया में गाँधीजी और उनकी आत्मकथा एक विलक्षण नमूना है। अपने त्याग एवं संघर्षपूर्ण जीवन को गाँधीजी ने इसमें प्रस्तुत किया है। आदि से अंत तक सत्य के रास्ते से अविचलित होनेवाले गाँधीजी एवं उनके विचार वर्तमान दुनिया में अधिक प्रासंगिक हैं।

यहाँ गाँधीजी की आत्मकथा के तीन अध्याय प्रस्तुत हैं- अनुभवों की बानगी, प्रिटोरिया जाते हुए और कुलीपन का अनुभव। दक्षिण अफ्रिका में और अंग्रेज़ लोगों से गाँधीजी को जो अनुभव होता है वह विशेष ध्यान देने योग्य है। गाँधीजी को महात्मा बनाने में ये अनुभव अपने आप में मील के पत्थर साबित हुए। तीनों अध्याय संक्षिप्त एवं सरल हैं। तीनों अध्यायों को छात्र ध्यान से पढ़ें और उनसे प्रेरणा ग्रहण करें। तीनों अध्यायों को यहाँ पूर्ण रूप में दिया है।

1. अनुभवों की बानगी

नेटाल के बन्दरगाह को डरबन कहते हैं और वह नेटाल बन्दर के नाम से भी पहचाना जाता है। मुझे लेने के लिए अब्दुल्ला सेठ आये थे। स्टीमर के घाट (डक) पर पहूँचने पर जब नेटाल के लोग अपने मित्रों को लेने स्टीमर पर आये, तभी मैं समझ गया कि यहाँ हिन्दुस्तानियों की अधिक इज्जत नहीं है। अब्दुल्ला सेठ को पहचाननेवाले उनके साथ जैसा बरताव करते थे, उसमें भी मुझे एक प्रकार की असभ्यता दिखायी पड़ी थी, जो मुझे व्यथित करती थी। अब्दुल्ला सेठ इस असभ्यता को सह लेते थे। वे उसके आदी बन गये थे। मुझे जो देखते वे कुछ कुतूहल की दृष्टि से देखते थे। अपनी पोशाक के कारण मैं दूसरे हिन्दुस्तानियों से कुछ अलग पड़ जाता था। मैंने उस समय 'फ्रॉक कोट' वगैरा पहने थे और सिर पर बंगाली ढंग की पगड़ी थी।

अब्दुल्ला सेठ मुझे घर ले गये। उनके कमरे की बगल में एक कमरा था, वह उन्होंने मुझे दिया। न वे मुझे समझते, और न मैं उन्हें समझता। उन्होंने अपने भाई के दिये हुए पत्र पढ़े और वे ज्यादा घबराये। उन्हें जान पड़ा कि भाई ने तो उनके घर एक सफेद हाथी ही बाँध दिया है। मेरी साहबी रहन-सहन उन्हें खर्चीली मालूम हुई। इस समय मेरे लिए कोई खास काम न था। उनका मुकदमा तो ट्रान्सवाल में चल रहा था। मुझे तुरन्त वहाँ भेजकर क्या करते? इसके अलावा, मेरी होशियारी या ईमानदारी का विश्वास भी किस हद तक किया जाये? प्रिटोरिया में वे मेरे साथ रह नहीं सकते थे। प्रतिवादी प्रिटोरिया में रहता था। मुझ पर उसका अनुचित प्रभाव पड़ जाये तो क्या हो? यदि वे मुझे इस मुक्दमे का काम न सौपे, तो दूसरे काम तो उनके कारकुन मुझ से अच्छा कर सकते थे। कारकुनों से गलती हो तो उन्हें उलाहना दिया जा सकता था, पर मैं गलती करूँ

तो? काम या तो मुकदमे का था या फिर मुहर्रिरका था। इनके अलावा तीसरा कोई काम न था। अत एव यदि मुकदमे का काम न सौंपा जाता, तो मुझे घर बैठे खिलाने की नौबत आती।

अब्दुल्ला सेठ बहुत कम पढ़े-लिखे थे, पर उनके पास अनुभव का ज्ञान बहुत था। उनकी बुद्धि तीव्र थी और स्वयं उन्हें इसका भान था। रोज़ के अभ्यास से उन्होंने सिर्फ बातचीत करने लायक अंग्रेज़ी का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। पर अपनी इस अंग्रेजी के द्वारा वे अपना सब काम निकाल लेते थे। वे बैंक के मैनेजरों से बातचीत करते थे, यूरोपियन व्यापारियों के साथ सौंदे कर लेते थे और वकीलों को अपने मामले समझा सकते थे। हिन्दुस्तानी उनकी बहुत इज्जत करते थे। उन दिनों उनकी फर्म हिन्दुस्तानियों की फर्मो में सबसे बड़ी, अथवा बड़ी फर्मो में एक तो थी ही। अब्दुल्ला सेठ का स्वभाव वहमी था।

उन्हें इस्लामका अभिमान था। वे तत्त्वज्ञान की चर्चा के शौकीन थे। अरबी नहीं जानते थे, फिर भी कहना होगा कि उन्हें कुरान शरीफ की और आम तौर पर इस्लाम के धार्मिक साहित्य की अच्छी जानकारी थी। दृष्टान्त तो उन्हें कण्ठाग्र ही थे। उनके सहवास से सुझे इस्लामका काफी-व्यावहारिक ज्ञान हो गया। हम एक-दूसरे को पहचानने लगे। उसके बाद तो वे मेरे साथ खूब धर्म-चर्चा करते थे।

वे दूसरे या तीसरे दिन मुझे डरबन की अदालत दिखाने ले गये। वहाँ कुछ जान-पहचान करायी। अदालत में मुझे अपने वकील के पास बैठाया। मजिस्ट्रेट मुझे बार-बार देखता रहा। उसने मुझे पगड़ी उतारने के लिए कहा। मैंने इनकार किया और अदालत छोड़ दी।

मेरे भाग्य में यहाँ भी लड़ाई ही बदी थी।

अब्दुल्ला सेठ ने मुझे पगड़ी उतारने का रहस्य समझायाः मुसलमानी पोशाक पहना हुआ आदमी अपनी मुसलमानी पगड़ी पहन सकता है। पर दूसरे हिन्दुस्तानियों को अदालत में पैर रखते ही अपनी पगड़ी उतार लेनी चाहिये।

इस सूक्ष्म भेद को समझाने के लिए मुझे कुछ तथ्यों की जानकारी देनी होगी।

इन दो-तीन दिनों में ही मैंने देख लिया था कि हिन्दुस्तानी अफ्रीका में अपने-अपने गुट बनाकर बैठ गये थे। एक भाग मुसलमान व्यापारियों का था- वे अपने को 'अरब' कहते थे। दूसरा भाग हिन्दू या पारसी कारकुनों, मुनीमों या गुमाशतों का था। हिन्दू कारकुन अधर में लटकते थे। कोई 'अरब' में मिल जाते थे। पारसी अपना परिचय परसियन के नाम से देते थे। व्यापार के अलावा भी इन तीनों का आपस में थोड़ा-बहुत सम्बन्ध अवश्य था। एक चौथा और बड़ा समुदाय तामिल, तेलुगु और उत्तर हिन्दुस्तान के गिरमिटिया तथा गिरमिट- मुक्त हिन्दुस्तानियों का था। गिरमिट का अर्थ हैं वह इकरार-यानी 'एग्रिमेण्ट', जिसके अनुसार उन दिनों गरीब हिन्दुस्तानी पाँच साल तक मजदूरी करने के लिए नेटाल जाते थे। गिरमिट 'एग्रिमेण्ट' का ही अपभ्रंश है और उसी से गिरमिटिया शब्द बना है। इस वर्ग के साथ दूसरों का व्यवहार, केवल काम की दृष्टि से ही रहता था। अंग्रेज़ इन गिरमिटवालों को 'कुली' के नाम से पहचानते थे; और चूँकि वे संख्या में अधिक थे, इसलिए दूसरे हिन्दुस्तानियों को भी 'कुली' कहते थे। कुली के बदले 'सामी' भी कहते। 'सामी' ज्यादातर तामिल नामों के अन्त में लगनेवाला प्रत्यय है।

'सामी' अर्थात् स्वामी। स्वामी का मतलब तो मालिक हुआ। इसलिए जब कोई हिन्दुस्तानी सामी शब्द से चिढ़ता और उस में कुछ हिम्मत होती, तो वह अपने को 'सामी' कहनेवाले अंग्रेज़ से कहता: "तुम मुझे 'सामी' कहते हो, पर जानते हो की 'सामी' का मतलब मालिक होता है? मैं तुम्हारा मालिक तो हूँ नहीं।" यह सुनकर कोई अंग्रेज शरमा जाता, कोई चिढ़ कर ज्यादा गालियाँ देता और कोई-कोई मारता भी सही; क्यों कि उसकी दृष्टि से तो 'सामी' शब्द निन्दासुचाक ही हो सकता था। उसका अर्थ मालिक करना तो उसे अपमानित करने के बराबर ही हो सकता था।

इसलिए मैं 'कुली बारिस्टर' कहलाया। व्यापारी 'कुली व्यापारी' कहलाते थे। कुली का मूल अर्थ मजदूर तो भुला दिया गया। मुसलमान व्यापारी यह शब्द सुनकर गुस्सा होता और कहता: "मैं कुली नहीं हूँ। मैं तो अरब हूँ।" कोई थोड़ा विनयशील अंग्रेज होता तो यह सुनकर माफी भी माँग लेता।

ऐसी दशा में पगड़ी पहनने का प्रश्न एक महत्त्व का प्रश्न बन गया। पगड़ी उतारने का मतलब था अपमान सहन करना। मैंने तो सोचा कि मैं हिन्दुस्तानी पगड़ी को बिदा कर दूँ और अंग्रेजी टोपी पहन लूँ, ताकि उसे उतारने में अपमान न जान पड़े और मैं झगड़े से बच जाऊँ।

पर अब्दुल्ला सेठ को यह सुझाव अच्छा न लगा। उन्होंने कहा: "अगर आप इस वक्त, यह फेरफार करेंगे, तो उससे अनर्थ होगा। जो दूसरे लोग देश की ही पगड़ी पहनना चाहेंगे, उनकी स्थिति नाजुक बन जायगी। इसके अलावा, आपको तो देशी पगड़ी ही शोभा देगी। आप अंग्रेजी टोपी पहनेंगे तो आपकी गिनती 'वेटरों' में होगी।"

इन वाक्यों में दुनियावी समझदारी थी, देशाभिमान था और थोड़ी संकुचितता भी थी। दुनियावी समझदारी तो स्पष्ट ही है। देशाभिमान के बिना पगड़ी का आग्रह नहीं हो सकता; और संकुचितता के बिना 'वेटर' की टीका संभव नहीं। गिरमिटिया हिन्दुस्तानी हिन्दू, मुसलमान और ईसाई इन तीन भागों में बँटे हुए थे। जो गिरमिटिया हिन्दुस्तानी ईसाई बन गये, उनकी संतान ईसाई कहलायी। सन् 1893 में भी ये बड़ी संख्या में थे। वे सब अंग्रेजी पोशाक ही पहनते थे। उनका एक खासा हिस्सा होटलों में नौकरी करके अपनी आजीविका चलाता था। अब्दुल्ला सेठ के वाक्यों में अंग्रेजी टोपी की जो टीका थी, वह इन्हीं लोगों को लक्ष्य में रखकर की गयी थी। इसके मूल में मान्यता यह थी कि होटल में 'वेटर' का काम करना बुरा है। आज भी यह भेद बहुतों के मन में बसा हुआ है।

कुल मिलाकर अब्दुल्ला सेठ की दलील मुझे अच्छी लगी। मैने पगड़ी के किस्से को लेकर अपने और पगड़ी के बचाव में समाचार पत्रों के नाम एक पत्र लिखा। अखबारों में मेरी पगड़ी की खूब चर्चा हुई। 'अनवेलकम विज़िटर'- अवांछित अतिथि- शीर्षक से अखबारों में मेरी चर्चा हुई, और तीन-चार दिन के अंदर ही मैं अनायास दक्षिण अफ्रीका में प्रसिद्ध पा गया। किसी ने मेरा पक्ष लिया और किसी ने मेरी धृष्टता की खूब निन्दा की।

मेरी पगड़ी तो लगभग अन्त तक बनी रही। कब गई सो हम अन्तिम भाग में देखेंगे।

2. प्रिटोरिया जाते हुए

मैं डरबन में रहनेवाले ईसाई हिन्दुस्तानियों के सम्पर्क में भी तुरन्त आ गया। वहाँ की अदालत के दुभाषिया मि. पाल रोमन कैथोलिक थे। उनसे परिचय किया और प्रोटेस्टेण्ट मिशन के शिक्षक स्व. मि. सुभान गॉडफ्रेसे भी परिचित हुआ। इन्हीं के पुत्र जेम्स गॉडफ्रे यहाँ दक्षिण अफ्रीका के भारतीय प्रतिनिध-मण्डल में पिछले साल आये थे। इन्हीं दिनों स्व. पारसी रुस्तमजी से परिचय हुआ, और तभी स्व. आदम जी मियांखानके साथ जान-पहचान हुई। ये सब भाई अभी तक काम के सिवा एक-दूसरे से मिलते न थे, लेकिन जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, बाद में ये एक-दूसरे के काफी नजदीक आये।

मैं इस प्रकार जान-पहचान कर रहा था कि इतने में फर्म के वकील की तरफ से पत्र मिला कि मुकदमे की तैयारी की जानी चाहिये और खुद अब्दुल्ला सेठ को प्रिटोरिया जाना चाहिये अथवा किसी को वहाँ भेजना चाहिये।

अब्दुल्ला सेठ ने वह पत्र मुझे पढ़ने को दिया और पूछा, "आप प्रिटोरिया जायेंगे?" मैंने कहा, "मुझे मामला समझाइये, तभी कुछ कह सकूँगा। अभी तो मैं नहीं जानता कि मुझे वहाँ क्या करना होगा।" उन्होंने अपने मुनीमों से कहा कि वे मुझे मामला समझा दें।

मैंने देखा कि मुझे ककहरे से शुरू करना होगा। जब मैं जंजीबार में उतरा था तो वहाँ की अदालत का काम देखने गया था। एक पारसी वकील किसी गवाह के बयान ले रहे थे और जमा-माने के सवाल पूछ रहे थे। मैं तो जमा-नामे में कुछ समझता ही न था। वही-खाता न तो मैंने हाईस्कूल में सीखा था और न विलायत में।

मैंने देखा कि इस मामले का दार-मदार बहियों पर है। जिसे बही-खातेकी जानकारी हो वही इस मामले को समझ और समझ और समझा सकता है। जब मुनीम नामे की बात करता, तो मैं परेशान होता। मैं पी. नोटका मतलब नहीं जानता था। कोश में यह शब्द मिलता न था। जब मैंने मुनीम के सामने अपना अज्ञान प्रकट किया तब उससे पता चला कि पी. नोटका मतलब प्रामिसरी नोट है। मैंने बही-खाते की पुस्तक खरीदी और पढ़ डाली। कुछ आत्म-विश्वास उत्पन्न हुआ। मामला समझ में आया। मैंने देखा कि अब्दुल्ला सेठ बही-खाता लिखना नहीं जानते थे। पर उन्होंने व्यावहारिक ज्ञान इतना अधिक प्राप्त कर लिया था कि वे बही-खाते की गुत्थियाँ फौरन सुलझा सकते थे। मैंने उनसे कहा, "मैं प्रिटोरिया जाने को तैयार हूँ।" सेठ ने पूछा, "आप कहाँ उतरेंगे?"

मैंने जवाब दिया, "जहाँ आप कहें।"

"तो मैं अपने वकील को लिखूँगा। वे आप के लिए ठहरने का प्रबंध करेंगे। प्रिटोरिया में मेरे मेमन दोस्त हैं। उन्हें मैं अवश्य लिखूँगा, पर उनके यहाँ आपका ठहरना ठीक न होगा। वहाँ हमारे प्रतिपक्षी की अच्छी रसाई है। आप के नाम मेरे निजी कागज़-पत्र पहुँचें और उनमें से कोई उन्हें पढ़ ले, तो हमारे मुकदमे को नुकसान पहुँच सकता है। उनके साथ जितना कम सम्बन्ध रहे उतना ही अच्छा है।"

मैंने कहा, "आपके वकील जहाँ रखेंगे वहीं मैं रहूँगा, अथवा मैं कोई अलग घर खोज लूँगा। आप निश्चिन्त रहिये, आपकी एक भी व्यक्तिगत बात बाहर न जायेगी। पर मैं मिलता-जुलता तो सभी से रहूँगा। मुझे तो प्रतिपक्षी से मित्रता कर लेनी है। मुझसे बन पड़ा तो मैं इस मुकदमे को आपस में निबटाने की भी कोशिश करूँगा। आखिर तैयब सेठ आपके रिश्तेदार ही तो हैं न?"

प्रतिपक्षी स्व. तैयव हाजी खानमहम्मद अब्दुल्ला सेठ के निकट सम्बन्धी थे।

मैंने देखा कि मेरी इस बात पर अब्दुल्ला सेठ कुछ चौंके। पर उस समय तक मुझे डरबन पहुँचे छह-सात दिन हो चुके थे। हम एक-दूसरे को जानने और समझने लग गये थे। मैं अब 'सफेद हाथी' लगभग नहीं रहा था। वे बोलेः

"हाँ...आ...आ, यदि समझौता हो जाये, तो उसके जैसी भली बात तो कोई है ही नहीं। पर हम रिश्तेदार हैं, इसलिए एक-दूसरे को अच्छी तरह पहचानते हैं। तैयब सेठ जल्दी माननेवाले नहीं हैं। हम भोलापन दिखायें, तो वे हमारे पेट की बात निकलवा लें और फिर हम को फँसा लें। इसलिए आप जो कुछ करें सो होशियार रहकर कीजिये।"

मैंने कहा, "आप तनिक भी चिन्ता न करें। मुझे मुकदमे की बात तैयब सेठ से या किसी और से करने की आवश्यकता ही नहीं है। मैं तो इतना ही कहूँगा कि आप दोनों आपस में झगड़ा निबटा लें, तो वकीलों के घर न भरने पड़ें।"

मैं सातवें या आठवें दिन डरबन से खाना हुआ। मेरे लिए पहले दर्जे का टिकट कटाया गया। वहाँ रेल में सोने की सुविधा के लिए पाँच शिलिंग का अलग टिकट कटाना होता था। अब्दुल्ला सेठ ने उसे कटाने का आग्रह किया, पर मैंने हठवश, अभिमानवश और पाँच शिलिंग बचाने के विचार से बिस्तर का टिकट कटाने से इनकार कर दिया।

अब्दुल्ला सेठ ने मुझे चेताया, "देखिये, यह देश दूसरा है, हिन्दुस्तान नहीं है। खुदा की मेहरबानी है। आप पैसे की कंजूसी न कीजिये। आवश्यक सुविधा प्राप्त कर लीजिये।"

मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और निश्चिन्त रहने को कहा।

ट्रेन लगभग नौ बजे नेटाल की राजधानी मेरित्सबर्ग पहुँची। यहाँ बिस्तर दिया जाता था। रेलवे के किसी नौकर ने आकर पूछा, "आपको बिस्तर की जरूरत है?"

मैंने कहा, "मेरे पास अपना बिस्तर है।"

वह चला गया। इस बीच एक यात्री आया। उसने मेरी तरफ देखा। मुझे भिन्न वर्ण का पाकर वह परेशान हुआ, बाहर निकला और एक-दो अफसरों को लेकर आया। किसी ने मुझे कुछ न कहा। आखिर एक अफसर आयाष उसने कहा, "इधर आओ। तुम्हें आखिरी डिब्बे में जाना है।"

मैंने कहा, "मेरे पास पहले दर्जे का टिकट है।"

उसने जवाब दिया, "इसकी कोई बात नहीं। मैं तुम से कहता हूँ कि तुम्हें आखिरी डिब्बे में जाना है।"

"मैं कहता हूँ कि मुझे इस डिब्बे में डरबन से बैठाया गया है और मैं इसी में जाने का इरादा रखता हूँ।"

अफसर ने कहा, "यह नहीं हो सकता। तुम्हें उतरना पड़ेगा, और न उतरे तो सिपाही उतारेगा।"

मैंने कहा, "तो फिर सिपाही भले उतारे, मैं खुद तो नहीं उतरूँगा।"

सिपाही आया। उसने मेरा हाथ पकड़ा और मुझे धक्का देकर नीचे उतारा। मेरा सामान उतार लिया। मैंने दूसरे डिब्बे में जाने से इनकार कर दिया। ट्रेन चल दी। मैं वेटिंग रूम में बैठ गया। अपना "हैण्ड-बैग' साथ में रखा। बाकी सामान को हाथ न लगाया। रेलवेवालों ने उसे कहीं रख दिया। सरदी का मौसम था। दक्षिण अफीका की सरदी ऊँचाईवाले प्रदेशों में बहुत तेज होती है। मेरित्सबर्ग इसी प्रदेश में था। इससे ठण्ड खूब लगी। मेरा ओवर-कोट मेरे सामान में था। पर सामान माँगने की हिम्नत न हुई। फिर अपमान हो तो? ठण्ड से मैं काँपता रहा। कमरे में दीया न था। आधी रात के करीब एक यात्री आया। जान पड़ा कि वह कुछ बात करना चाहता है, पर मैं बात करने की मनःस्थिति में न था।

मैंने अपने धर्म का विचार कियाः 'या तो मुझे अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिये या लौट जाना चाहिये, नहीं तो जो अपमान हों उन्हें सहकर प्रिटोरिया पहुँचना चाहिये और मुकदमा खतम करके देश लौट जाना चाहिये। मुकदमा अधूरा छोड़कर भागना तो नामर्दी होगी। मुझे जो कष्ट सहना पड़ा है, सो तो ऊपरी कष्ट है। वह गहराई तक पैठे हुए महारोग का लक्षण है। यह महारोग है रंग-द्वेष। यदि मुझ में इस गहरे रोग को मिटाने की शक्ति हो, तो उस शक्ति का उपयोग मुझे करना चाहिये। ऐसा करते हुए स्वयं जो कष्ट सहने पड़ें सो सब सहने चाहिये और उनका विरोध रंग-द्वेष को मिटाने की दृष्टि से ही करना चाहिये।'

यह निश्चय करके मैंने दूसरी ट्रेन में, जैसे भी हो, आगे ही जाने का फैसला किया।

सबेरे ही सबेरे मैंने जनरल मैनेजर को शिकायत का लम्बा तार भेजा। दादा अब्दुल्ला को भी खबर भेजी। अब्दुल्ला सेठ तुरन्त जनरल मैनेजर से मिले। जनरल मैनेजर ने अपने आदमियों के व्यवहार का बचाव किया, पर बतलाया कि मुझे बिना किसी रुकावट के मेरे स्थान तक पहुँचाने के लिए स्टेशन-मास्टर को कह दिया गया है। अब्दुल्ला सेठ ने मेरित्सबर्ग के हिन्दू व्यापारियों को भी मुझ से मिलने और मेरी सुख-सुविधा का खयाल रखने का तार भेजा और दूसरे स्टेशनों पर भी इसी आशय के तार खाना किये। इससे व्यापारी मुझे मिलने स्टेशन पर आये। उन्होंने अपने ऊपर पड़नेवाले कष्टों की कहानी मुझे सुनायी और मुझ से कहा कि आप पर जो बीती है, उस में आश्चर्य की कोई बात नहीं है। जब हिन्दुस्तानी लोग पहले या दूसरे दर्जे में सफर करते हैं, तो अधिकारियों और यात्रियों की तरफ से रुकावट खड़ी होती ही है। दिन ऐसी ही बातें सुनने में बीता। रात पड़ी। ट्रेन आयी। मेरे लिए जगह तैयार ही थी। बिस्तर का जो टिकट मैंने

डरबन में कटाने से इनकार किया था, वह मेरित्सबर्ग में कटाया। ट्रेन मुझे चार्ल्सटाउन की ओर ले चली।

3. कुलीपन का अनुभव

ट्रान्सवाल और ऑरन्ज फ्री स्टेट के हिन्दुस्तानियों की स्थिति का पूरा चित्र देने का यह स्थान नहीं है। उसकी जानकारी चाहनेवाले को 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' पढ़ना चाहिये। पर यहाँ उसकी रूपरेखा देना आवश्यक है।

ऑरन्ज फ्री स्टेट में तो एक कानून बनाकर सन् 1888 में या उससे पहले हिन्दुस्तानियों के सब हक छीन लिये गये थे। वहाँ हिन्दुस्तानियों के लिए सिर्फ होटल के वेटर के रूप में काम करने या ऐसी कोई दूसरी मज़दूरी करने की ही गुंजाइश रह गयी थी। जो व्यापारी हिन्दुस्तानी थे, उन्हें नाममात्र का मुआवजा देकर निकाल दिया गया था। हिन्दुस्तानी व्यापारियों ने अर्जियाँ वगैरा भेजीं, पर वहाँ उनकी तूती की आवाज कौन सुनता?

ट्रान्सवाल में सन् 1885 में एक कड़ा कानून बना। 1886 में उसमें कुछ सुधार हुआ। उसके फलस्वरूप यह तय हुआ कि हर एक हिन्दुस्तानी को प्रवेश-फीस के रूप में तीन पौंड जमा कराने चाहिये। उनके लिए अलग छोड़ी गयी जगह में ही वे जमीन मालिक हो सकते थे। पर वहाँ भी उन्हें व्यवहार में जमीन का स्वामित्व नहीं मिला। उन्हें मताधिकार भी नहीं दिया गया था। ये तो खास एशियावासियों के लिए बने कानून थे। इसके अलावा, जो कानून काले रंग के लोगों को लागू होते थे, वे भी एशियावासियों पर लागू होते थे। उनके अनुसार हिन्दुस्तानी लोग पटरी (फूटपाथ) पर अधिकार-पूर्वक चल नहीं सकते थे और रात नौ बजे के बाद परवाने के बिना बाहर नहीं निकल सकते थे। इस अंतिम कानून का अमल हिन्दुस्तानियों पर न्यूनाधिक प्रमाण में होता था। जिनकी गिनती अरबों में होती थी, वे बतौर मेहरबानी के इस नियम से मुक्त समझे जाते थे। मतलब यह कि इस तरह की राहत देना पुलिस की मर्जी पर रहता था।

इन दोनों नियमों का प्रभाव स्वयं मुझ पर क्या पड़ेगा, इसकी जाँच मुझे करानी पड़ी थी। मैं अकसर मि. कोट्स के साथ रात को घूम ने जाया करता था। कभी-कभी घर पहुँचने में दस भी बज जाते थे। अत एव पुलिस मुझे पकड़े तो? यह डर जितना स्वयं मुझे था उससे अधिक मि. कोट्स को था। अपने हब्शियों को तो वे ही परवाने देते थे। लेकिन मुझे परवाना कैसे दे सकते थे? मालिक अपने नौकर को ही परवाना देने का अधिकारी था। मैं लेना चाहूँ और मि. कोट्स देने को तैयार हो जायें, तो भी वह नहीं दिया जा सकता था, क्योंकि बैसा करना विश्वासधात माना जाता।

इसलिए मि. कोट्स या उनके कोई मित्र मुझे वहाँ के सरकारी वकील डॉ. क्राउज़े के पास ले गये। हम दोनों एक ही 'इन' के बारिस्टर निकले। उन्हें यह बात असह्य जान पड़ी कि रात नौ बजे के बाद बाहर निकलने के लिए मुझे परवाना लेना चाहिये। उन्होंने मेरे प्रति सहानुभूति प्रकट की। मुझे परवाना देने के बदले उन्होंने अपनी तरफ से एक पत्र दिया। उसका आशय यह था कि मैं चाहे जिस समय चाहे जहाँ जाऊँ, पुलिस को उसमें दखल नहीं देना चाहिये। मैं इस पत्र को हमेशा अपने साथ रखकर घूमने निकलता था। कभी उसका उपयोग नहीं करना पड़ा। लेकिन इसे तो केवल संयोग ही समझना चाहिये।

डॉ. क्राउज़ ने मुझे अपने घर आने का निमंत्रण दिया। मैं यह कह सकता हूँ कि हमारे बीच मित्रता हो गयी थी। मैं कभी-कभी उनके यहाँ जाने लगा। उनके द्वारा उनके अधिक प्रसिद्ध भाई के साथ मेरी पहचान हुई। वे जोहानिस्बर्ग में पब्लिक प्रोसिक्यूटर नियुक्त हुए थे। उन पर बोअर युद्ध के समय अंग्रेज अधिकारी का खून कराने का षड्यंत्र रचने के लिए मुकदमा भी चला था और उन्हें सात साल के कारावास की सजा मिली थी। बेंचरों ने उनकी सनद भी छीन ली थी। लड़ाई समाप्त होने पर डॉ. क्राउज़े जेलसे छूटे, सम्मानपूर्वक ट्रान्सवाल की अदालत में फिर से प्रविष्ट हुए और अपने धन्धे से लगे। बाद में ये सम्बन्ध मेरे लिए सार्वजनिक कार्यों में उपयोगी सिद्ध हुए थे और मेरे कई सार्वजनिक काम इनके कारण आसान हो गये थे।

पटरी पर चलने का प्रश्न मेरे लिए कुछ गंभीर परिणामवाला सिद्ध हुआ। मैं हमेशा प्रेसिडेण्ड स्ट्रीट के रास्ते एक खुले मैदान में घूमने जाया करता था। इस मुहल्ले में प्रेसिडेण्ट क्रूगर का घर था। यह घर सब तरह के आडंबरों से रहित था। इसके चारों ओर कोई अहाता भी नहीं था। आसपास के दूसरे घरों में और इस में कोई फरक नहीं मालूम होता था। प्रिटोरिया में कई लखपतियों के घर इसकी तुलना में बहुत बड़े, शानदार और अहातेवाले थे। प्रेसिडेण्ड की सादगी प्रसिद्ध थी। घर के सामने पहरा देनेवाले संतरी को देखकर ही पता चलता था कि यह किसी अधिकारी का घर है। मैं प्रायः हमेशा ही इस सिपाही के बिलकुल पास से होकर निकलता था, पर वह मुझे कुछ नहीं कहता था। सिपाही समय-समय पर बदला करते थे। एक बार एक सिपाही ने बिना चेताये, बिना पटरी पर से उतर जाने को कहे, मुझे धक्का मारा, लात मारी और नीचे उतार दिया। मैं तो गहरे सोच में पड़ गया। लात मारने का कारण पूछने से पहले ही मि. कोट्स ने, जो उसी समय घोड़े पर सवार होकर उधर से गुजर रहे थे, मुझे पुकारा और कहाः

"गाँधी, मैंने सब देखा है। आप मुकदमा चलाना चाहें तो मैं गवाही दूँगा। मुझे इस बात का बहुत खेद है कि आप पर इस तरह हमला किया गया।"

मैंने कहाः "इस में खेदका कोई कारण नहीं। सिपाही बेचार क्या जाने? उसके लिए तो काले-काले सब एक से ही है। वह हब्शियों को इसी तरह पटरी पर से उतारता होगा। इसलिए उसने मुझे भी धक्का मारा। मैंने तो नियम ही बना लिया है कि मुझ पर जो बीतेगी, उसके लिए मैं कभी अदालत में नहीं जाऊँगा। इसलिए मुझे मुकदमा नहीं चलाना है।"

"यह तो आपने अपे स्वभाव के अनुरूप ही बात कही है। पर आप इस पर फिर से सोचिये। ऐसे आदमी को कुछ सबके तो देना ही चाहिये।''

इतना कहकर उन्होंने उस सिपाही से बात की और उसे उलाहना दिया। मैं सारी बात तो समझ नहीं सका। सिपाही डच था और उसके साथ उनकी बातें डच भाषा में हुई। सिपाही ने मुझ से माफी माँगी। मैं तो उसे पहले ही माफ कर चुका था।

लेकिन उस दिन से मैंने वह रास्ता छोड़ दिया। दूसरे सिपाहियों को इस घटना का क्या पता होगा? मैं खुद होकर फिर लात किसलिए खाऊँ। इसलिए मैंने घूमने जाने के लिए दूसरा रास्ता पसन्द कर लिया।

इस घटना ने प्रवासी भारतीयों के प्रति मेरी भावना को अधिक तीव्र बना दिया। इन कायदों को बारे में ब्रिटिश एजेण्ट से चर्चा करके प्रसंग आने पर इसके लिए एक 'टेस्ट' केस चलाने की बात मैं ने हिन्दुस्तानियों से की।

इस तरह मैंने हिन्दुस्तानियों की दुर्दशा का ज्ञान पढ़कर, सुनकर और अनुभव करके प्राप्त किया। मैंने देखा कि स्वाभिमान की रक्षा चाहनेवाले हिन्दुस्तानियों के लिए दक्षिण अफ्रीका उपयुक्त देश नहीं है। यह स्थिति किस तरह बदली जा सकती है, इसके विचार में मेरा मन अधिकाधिक व्यस्त रहने लगा। किन्तु अभी मेरा मुख्य धर्म तो दादा अब्दुल्ला के मुकदमे को ही सम्भालने का था।

Module-III

Essays

1. भारतीय संस्कृति और बापू

- हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी साहित्य जगत में आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का उल्लेख बडे सम्मान के साथ किया जाता है। उनकी खासियत इस बात पर रही है कि प्राचीन के प्रति पूर्ण आस्थावान होते हुए भी विकास के आधुनिक नियम स्वीकार करते हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति उनके मन में अपार निष्ठा थी। उन्होंने 'कबीर', 'सूर साहित्य', 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', 'हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास' आदि आलोचनात्मक ग्रंथ और 'कुटज', 'आशोक के फूल', 'विचार और वितर्क', 'पुनश्च' जैसे चर्चित निबंध-संग्रह लिखे। अपने लेखों में उन्होंने मनुष्य के सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्षों का बडा सफल उद्‌घाटन किया है। 'भारतीय संस्कृति और बापू' 1948 मई की 'आजकल' पत्रिका में प्रकाशित द्विवेदी जी का लेख है जिसमें भारतीय संस्कृति के सफल उन्नायक के रूप मे महात्मागाँधी का संस्मरण किया गया है।

भारतवर्ष के इतिहास में गाँधीजी की हत्या का समाचार एक काले पन्ने के रूप में जुडा हुआ है। एक साहित्यकार और राष्ट्रीय हितचिन्तक के रूप में विख्यात लेखक के मन में गाँधीजी की मृत्यु एक भयंकर दुर्घटना के रूप में ही छायी हुई। उन्होंने सोचा कि जिस नौजवान ने गाँधीजी की हत्या की उसने भारत जैसे देश की प्राचीन परंपरा और धर्म के मा थे बडा कलंक मढ़ दिया। इस घटना से भारतवर्ष का भाग्य अप्रसन्न हो गया है।

लेकिन गाँधीजी के शरीर को ही घातक निर्जीव कर सका है भारत देश में उन्हीं द्वारा चलाया गया दर्शन और मानव धर्म अमर ही है। गाँधीजी को भारतीय संस्कृति के सर्वोत्तम प्रतीक के रूप में माननेवाले एक देश में यह संस्कृति मर जाती नहीं है। भारतीय संस्कृति की प्राचीन परंपरा में गाँधीजी की हत्या जैसी काली-अंधकारमयी घटनाएँ घटती रही है लेकिन संस्कृति की अक्षुण्ण रोशनी उन सबको हराकर चलती आयी है। गुलामी के दुःखभरे एक कालखण्ड में ही गाँधीजी भारत में पैदा हुए थे। यह आश्चर्य की बात रही कि ऐसे एक पददलित समय में भी भारतीय संस्कृति जीवित रही और गाँधीजी जैसे महापुरुष को जन्म देने का साहस उसने दिखाया। लेखक अपने आशावाद का प्रमाण देकर बतारहे है भारत की संस्कृति इतिहास की रक्षा केलिए हर एक काल में बुद्ध और गाँधी जैसे महापुरुषों को पैदा कर रहेगी, यही उसकी अमरता है।

भारतीय इतिहास विभिन्न जातियों, आचार-विचारों, विश्वासों को सहवास और संघर्ष का साक्षी रहकर उसके विकास का प्रमाण देता है। विविधताओं में एकता हमारी संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता मानी जाती है। भारत की यही परंपरा रही है कि 'एक' को नाना भाव से देखने और उन सबमें एकता समझने को तैयार है। वैदिक युग की इस परंपरा की आधुनिक व्याख्या गाँधी के जीवन से मिल जाती है। गाँधीजी ने लोक-सेवा को ही भगवत् सेवा मान ली और अपने कर्मों से लोक अथवा परमात्मा की सेवा की। लेकिन उनकी लोक सेवा आधुनिक

राजनैतिकों के समान आराम-अधिकारों के लिए नहीं रही बल्कि स्वार्थ के ऊपर परमार्थ के लिए रही।

साधारण जनता के सुख दुःखों में अपने को समर्पित गाँधीजी जैसे लोक सेवक आज गायब है। युद्ध के बीच वे शान्तिदूत रहे और अपनी मृत्यु से भी यही स्थापित किया है कि संस्कृति की रक्षा, देश के निरीह लोगों की रक्षा अपनी जान से भी बढ़कर है। अतः लेखक को लगता है कि यही भगवान की सबसे बडी आराधना है। अपने सुख-स्वार्थों के लिए जनहित को अनदेखा करनेवाले नेताओं के बीच गाँधीजी इसलिए अमर बन जाता है कि उन्होंने अपने संपूर्ण सुखों को पूरे जीवन को जनहित के लिए समर्पित किया है।

द्विवेदी जी इस बात पर ज़ोर देते हैं कि पर-पीडा को स्वानुभूत करने की ताकत निस्वार्थ प्रेम की भावना से ही प्राप्त हो जाती है। प्रेम को बंधन का नहीं मोक्ष का साधन बनाना उत्कृष्ट कार्य है। मानवता के प्रति गाँधीजी की प्रेम भावना उसे इतिहास-पुरुष बना देती है। भारतीय संस्कृति में, पुराण ग्रंथों में वर्णित यह मैत्री भाव गाँधीजी को मानव से अपृथक बना देता है।

लेखक को इस बात पर गहरा दुःख आता है कि अपने स्नेह को सारे धर्मावलंबियों के प्रति समर्पित करनेवाले गाँधी की हत्या करके एक हिन्दू नवयुवक ने धर्मनिरपेक्ष देश की संस्कृति पर कुठाराघात किया। गाँधीजी का मत था कि लोक-सेवा ही उनके जीवन का परम आदर्श है, जिसके लिए हिमालय जाना या तप-जप करना ज़रूरी नहीं है। उनकी इस मानसिकता की तुलना लेखक प्रह्लाद की मानसिकता से करते है जिन्होंने अपने मोक्ष के चिंतक मुनिगणों को तिरस्कृत कर, दयनीय लोगों को छोडकर अपने लिए जप-तप करनेवालों की निंदा कर पूरी जनता के मोक्ष की प्रार्थना की थी।

समस्त जगत् की भलाई की सोच से बढ़कर कोई मोक्ष नहीं समझने की इस परंपरा के पालक ही रहे गाँधीजी। वे सेवा और त्याग से प्राप्त प्रमुख के धनी रहे। अपने प्राण को भी छोडकर अन्यों की भलाई करने की इस महान परंपरा के प्रवर्तक के रूप में गाँधीजी का नाम इतिहास के अंत तक बना रहेगा। लेखक का यह अटल विश्वास है कि हत्या करके गाँधीजी द्वारा जलाया गया स्नेहदीप बुझाने की मिथ्या कल्पना करनेवालों को यह निराशा की बात है कि उनके बलिदान ने ही उनके जीवन को, भारतीय संस्कृति की गरिमा को और भी प्रोज्वलित कर दिया है।

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी सहज भाषा-शैली में मानवतावाद पर आधृत भारतीय संस्कृति पर प्रकाश डालकर उसके सफल संरक्षक के रूप में गाँधीजी को देखा-परखा है। भागवत और कबीरदास के उद्धरणों से वे इसकी प्रामाणिकता पर भी संबल देते हैं। गाँधीजी की हत्या के शोक को भारतीय संस्कृति के सफल उन्नायक की अमरता में बदल डालने की शक्ति लेखक की शैली में दिखाई देती है।

2. पुण्य-स्मरण

- महादेवी वर्मा

साहित्य की महत्वपूर्ण विधा संस्मरण को हिन्दी साहित्य के इतिहास में गौरवशाली स्थान का अधिकारी बना देने में महादेवी वर्मा ने सराहनीय कार्य किया है। 'अतीत के चलचित्र' और

'स्मृति की रेखाएँ' के प्रकाशन से तत्कालीन साहित्य संसार में संस्मरण विधा केन्द्र में आ सकी थी। महादेवी जी की भाषा में साधारण मनुष्य और महापुरुष एक समान स्मृति के जीवित चित्र बन जाते हैं। 'पुण्य स्मरण' महात्मागाँधी के व्यक्तित्व पर आधारित महादेवी जी का संस्मरण है, जिसमें उन्होंने गाँधीजी का रूप चित्रण और चरित्र चित्रण अपनी अनूठी शैली में किया है।

संस्मरण का शुरूआत में गाँधीजी के समकालीन क्रान्तिकारी लेनीन का उल्लेख करके लेखिका बताती है कि साम्राज्यवाद और नव उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए अवतरित ये महापुरुष समय की ज़रूरत थी। अपने महान कर्मों से विशाल हृदयवाले बनकर भी ये दोनों एक-समान साधारण जनता के प्रतिनिधि थे।

गाँधीजी के रूप चित्रण में लेखिका ने बड़ी आत्मीयता दिखाई है। उनका ही कहना है- "कुछ कृश, लंबी और इस्पाती स्नायुजाल से किसी उज्ज्वल श्यामवर्ण देह को देखकर लगता था मानो किसी साँचे ढली लौह प्रतिमा को ज्वाला से धोकर स्वच्छ कर दिया गया हो।" उनका शरीर कोमलता और दृढ़ता का अविश्वसनीय समन्वय था, दृष्टि में अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण समर्पण भाव और दृढ़ निश्चय भरे हुए थे। अकंपित, अविचलित गति से चलनेवाले, खादी से अच्छादित शरीर में अपने गन्तव्य के प्रति अर्डिग आस्था भरी हुई थी। उनके रूप में ही दीप्त आन्तरिक अमोघ शक्ति का रेखाचित्र महादेवी जी यों खींचती हैं- "विभिन्न विचारों के केन्द्र सा बडा सिर, चिन्तन रेखाओं युक्त माथा, स्वाभिमान का पता देती हुई सीधघी नासिका, दृढ़ निश्चय व्यक्त करती हुई चिचुक का सौन्दर्य पर कोई दावा नहीं था, परन्तु एक बार उस मुख को देखकर भूलना कठिन ही नहीं दुष्कर था।" उनकी आँखों की आकर्षणीयता उनके बडपन में नहीं उनमें निहित आत्मीयता और आत्मविश्वास में व्यक्त होती थी।

लोक से आत्म संबंध स्थापित करके, उपेक्षा की दृष्टि से देखनेवालों को भी अपनी, ओर खींचने की शक्ति उनके व्यक्तित्व में निहित थी। गाँधीजी का कर्मक्षेत्र एक नहीं रह, धर्म, राजनीति, दर्शन और समाजशास्त्र उनके समग्र जीवन में व्याप्त रहे। राजनीतिक दासता से पीडित भारत की क्षरित जीवनी शक्ति को पुनरुज्जीवित करने का साहस गाँधीजी ने उठाया। जिस तरह दिन के लिए कोई आलोक विजातीय नहीं होता, समुद्र किसी जलधारा को नहीं लौटाता उसी तरह दूसरों की महानता से भी शक्ति प्राप्त करने की अद्भुत ताकत उनके आत्मविश्वास को बढ़ाती थी। अहिंसा और सत्य को शस्त्र बनाकर भारत की अस्वतंत्रता के विरुद्ध उन्होंने जो संघर्ष किया उनकी सफलता का इतिहास गवाह है। इन शस्त्रों के साथ निस्वार्थ प्रेम को भी अपनाकर गाँधीजी ने अपने व्यक्तित्व को जादूमय प्रभाव से प्रकाशित किया। अपने व्यक्तित्व से मानव मन में वे चिर-प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं। उनका प्रभाव प्राणवायु के समान सभी में समाया हुआ है।

महादेवी जी ने अपनी काव्यमय भाषा-शैली में भारतवासियों के महापुरुष का चित्रांकन अत्यंत प्रभावमयी ढंग से किया है। बाहरी और भीतरी चरित्र चित्रण में चित्रमयता का समावेश है। गाँधीजी की शारीरिक-चारित्रिक विशेषताओं को शब्द चित्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कथन के विस्तार से नहीं, संक्षिप्तता से संस्मरण में गंभीरता आयी है। गाँधीजी के पूरे व्यक्तित्व को गिने-चुने शब्दों में गहरी प्रभावमयी शैली में प्रस्तुत किया है। पूरी वर्णनात्मक शैली नहीं अपनायी गई है,

बीच-बीच में सामाजिक सत्यों का उद्‌घाटन भी रोचक ढंग से किया गया है। पाठकों के मन में एक पुण्य स्मरण के रूप में गहरी छाप पहूँचाने की कला में लेखिका सफल हुई है।

3. हिन्दी साहित्य पर गाँधी का प्रभाव

- डॉ. नगेन्द्र

हिन्दी के प्रतिष्ठित रसवादी आलोचक नगेन्द्र ने व्यावहारिक और सैद्धान्तिक समीक्षा को समृद्ध करने का कार्य किया है। 'साकेतः एक अध्ययन', 'सुमित्रानन्दन पंत', 'रीतिकाव्य की भूमिका', 'देव और उनकी कविता', 'आधुनिक हिन्दी नाटक', 'विचार और अनुभूति', 'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ', 'रस सिद्धान्त' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'हिन्दी-साहित्य पर गाँधी का प्रभाव' नगेन्द्र का आलोचनात्मक लेख है जिसमें प्रत्यक्ष-परोक्ष रीतियों से हिन्दी साहित्य पर प्रभाव डालनेवाले गाँधीजी के व्यक्तित्व, आदर्श और जीवन मूल्यों पर चर्चा की गई है।

गाँधी के व्यक्तित्व और व्यक्तिगत उपलब्धियाँ, नैतिक आदर्श, सामाजिक-राजनीतिक सिद्धान्त एवं कार्यक्रम आदि प्रत्यक्ष रूप से हिन्दी साहित्य को प्रभावित करनेवाले तत्व हैं। विशेषकर स्वतंत्रता संग्राम के काल से लेकर आत्मिक शक्ति, त्याग एवं अपरिग्रह, सत्य-निष्ठा, आत्म-बलिदान, अहं का सामाजीकरण राग का उन्नयन आदि व्यक्तिगत गुणों से प्रेरणा पाकर हिन्दी साहित्य में गाँधीजी पर काव्य रचनाएँ हुई थीं। प्रगीत, लंबी कविताएँ, महाकाव्य और खण्डकाव्य लिखकर गुप्त, पंत, महादेवी दिनकर, बधन जैसे बहुत सारे कवियों ने गाँधी के प्रति अपने श्रद्धाभाव दिखाया। सुमित्रानन्दन पंत की रचना 'लोकायतन' इस प्रकार का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है लेकिन नगेन्द्र जी का मत है कि गाँधीजी के व्यक्तित्व को संपूर्णता से मूर्त करने में ऐसे ग्रंथ पूर्णतः सफल नहीं हुए।

मानवता के उदार गुणों से दीप्त व्यक्तित्ववाले महापुरुषों की अंतः प्रेरणा पाकर, उनकी प्रतिष्ठा हेतु उन्नत भावों को भाषा का रूप देकर रचनेवाले साहित्य को ही रवीन्द्रनाथ ने महाकाव्य की संज्ञा दी है। इसी दृष्टि से देखने पर गाँधी से अधिक महाकाव्योचित चरित-नायक भारत के इतिहास में के बराबर है। काव्य में नायक की पुरातन संकल्पना पर नहीं, एक विशिष्ट प्रकार की प्रतिभा से निर्मित सौन्दर्य कल्पना पर ही गाँधीजी का महाकाव्य नायक रूप अधिष्ठित हो सकता है। गाँधीजी के जीवन पर प्रत्यक्ष रूप में आधृत रचनाओं में कलात्मक गुणों के रहते हुए भी विषय वस्तु के प्रति पूर्ण रूप से न्याय करने में असफलता मिलती है। कारण यह है कि उनके व्यक्तित्व में गहरे में पैठने में वे पराजित हुए हैं।

प्रेमचंद के उपन्यासों के अनेक पात्रों में गाँधी के सत्य-अहिंसा सिन्द्धान्तों का अनुकरण मिलता है गाँधी के सर्वोदय कार्यक्रमों की चर्चा भी हिन्दी साहित्य में खूब चली है। साकेत, कामायनी, अनघ जैसी रचनाओं में सत्याग्रह, तकली का प्रयोग, अहिंसा, हिन्दु-मुस्लिम-एकता आदि का समर्थन है। स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास पर आधृत रचनाओं में भी गाँधीजी के कार्यक्रमों की सूचना मिलती है।

इस प्रकार विभिन्न साहित्यिक विधाओं के प्रेरक तत्व के रूप में गाँधीजी का प्रत्यक्ष व्यक्तित्व और आदर्श काम कर रहा बल्कि लेखक की दृष्टि में वे पूर्णतः कलात्मक होकर भी सफल नहीं बन पाए हैं।

जीवन और साहित्य के मूल्यों की नवीन व्याख्या और जीवन और साहित्य में लक्षित क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में परोक्ष रूप से साहित्य पर गाँधीजी का प्रभाव पडा है। गाँधीजी के जीवन मूल्यों में 'कला जीवन के लिए' सिद्धान्त को प्रमुखता मिली थी। व्यावहारिक मानवतावाद यानि साहित्य की रचना मानवतावाद की स्थापना और रक्षा के लिए करना, गाँधी की दृष्टि में कला का परम लक्ष्य रहा। साहित्य में सौन्दर्य से भी बढ़कर वे सत्य के पक्षधर रहे। साहित्य को आत्माभिव्यक्ति मानने से उनका तात्पर्य यह रहा कि 'लोक' में 'स्व' का विलयन अर्थात् नैतिक गुण और काव्य गुण का एकीकरण।

गाँधीजी ने 'सत्य' की पुनर्व्याख्या प्रत्यक्ष और कल्पना दोनों दृष्टियों से स्वीकृत की है। 'मानव ही सत्य है' सिद्धान्त को उन्होंने मूर्त सिद्ध कर दिया। साथ ही साथ 'सत्य ईश्वर है' संकल्पना को भी पुष्टि देकर साहित्य जगत में सत्य को लेकर चलनेवाले संघर्ष द्वैत में एकता स्थापित करने की कोशिश की। जीवन दृष्टि की यह समग्रता और व्यापकता तत्कालीन साहित्य के लिए प्रेरणादायक रही। सत्य की व्याख्या और सत्य पर अधिष्ठित आचरण से उस पक्ष की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पुनर्व्याख्या करने में वे सफल रहे।

सत्य के साथ अहिंसा की संकल्पना भी नई दृष्टि से प्रस्तुत की गई। वैर-त्याग और पर दुःख कातरता को समन्वित कर अहिंसा के सर्जनात्मक पक्ष को गाँधीजी ने उजागर किया।

अपने जीवन मूल्यों में अंतर्विरोधों के रहते हुए भी उनमें सामंजस्य स्थापित करने की कला के वे धनी थे। अपने युग के संघर्षों में भी इस सामंजस्य स्थापना की बात उठाकर वे प्रेरणादायक रहे। सैद्धान्तिक प्रेरणा नहीं क्रियात्मक व्यवहार को सामने लाकर गाँधीजी का व्यक्तित्व साहित्य के लिए सदा प्रेरक रहा।

इस प्रकार अपनी मौलिक विचारधारा के संबल पर नगेन्द्र जी ने इस संक्षेप को प्रस्तुत कर रहे है कि गाँधीजी ने भारतीय संस्कृति और साहित्य में बढ़ते हुए भौतिक मूल्यों के विरुद्ध जीवन के शाश्वत तथा अंतरंग मूल्यों की पुन प्रतिष्ठा की। उनका जीवन ही उनका सन्देश रहा। जीवन और साहित्य के लिए। अतः साहित्य पर गाँधीजी का प्रभाव प्रत्यक्ष से बढ़कर परोक्ष ही अधिक सफल रहा है। गाँधीजी के व्यक्तित्व का प्रचार नहीं उनके विचारों-जीवनमूल्यों का आत्मसाक्षात्कार चिरस्थायी रह जाता है।

नगेन्द्र जी ने हिन्दी साहित्य पर गाँधीजी के प्रभाव का सूक्ष्म और गहन अध्ययन अपने लेख में प्रस्तुत किया है। गाँधीजी के प्रत्यक्ष प्रचारकों की आलोचना करके उनके जीवन मूल्यों को आत्मसात् करनेवालों की चिंता को लेखक ने प्रमुखता दी है।

Module-IV

Poems

1. तीन आयाम

- मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 1886 ई. में उत्तरप्रदेश के झाँसी जिले के चिरगाँव में हुआ। वे बचपन से ही कविता करते थे। अपने पिता से कवि बनने का आशिर्वाद उन्हें मिला था। महावीर प्रसाद द्विवेदी से गुप्तजी काफी प्रेरित हैं। 'साकेत' महाकाव्य पर उन्हें मंगला प्रसाद पारितोषिक देकर सम्मानित किया। वे कई वर्षों तक राज्यसभा के सदस्य रहे। भारत सरकार ने 'पद्मविभूषण' से उन्हें सम्मानित किया। 12 दिसंबर 1964 ई. को आपका देहावसाव हुआ। साकेत, द्वापर, जयभारत, विष्णुप्रिया, भारत भारती, जयद्रथवध, यशोधरा, पंचवटी आदि प्रमुख रचनाएँ हैं।

'तीन आयाम' कविता में गुप्तजी ने गाँधीवादी विचारधारा को हमारे सामने रखा है। इसमें गाँधीजी से संबंधित तीन पक्षों पर कवि प्रकाश डालते हैं। पहले पक्ष में कवि बताते हैं कि है गाँधीजी तुम संत महात्मा हो और हम जैसे दीन हीन लोगों केलिए तुम जगत के बापू हो। तुम दलित पीडितों के वरदाता हो और गतिहीन लोगों केलिए आश्रय स्थल हो। अजातशत्रुता की उस परंपरा के प्रमाण स्वतः तुम हो और तुम सदय बंधु हो, विरोधियों से भी प्रेम करते हो। यहाँ गाँधीजी के महान व्यक्तित्व को उजागर किया है।

दूसरे आयाम में गुप्तजी बताते हैं कि भारत माता के मंदिर मे तुम्हारा त्याग संग्रहीत है। तुम्हारा बाह्य व्यक्तित्व जो है वह हमारे ही वर्तमान वा अंतर्माग है। किंतु तुम्हारे अंतरंग में ही हमारा अतीत जाग उठा है। है बापू,व्यग्र हमारे भविष्य को तुम्हारा सुमन पराग मिले। यहाँ विशेषकर गाँधीजी को प्रेरणादायक शक्ति के रुप में कवि गुप्त जी ने प्रस्तुत किया है।

तीसरे आयाम में गाँधीजी की हत्या पर कवि लज्जा प्रकट करते हैं। कवि राम से पूछते हैं कि अरे राम, हम कैसे गाँधी वियोग का शोक झेल सकते? और गाँधी हत्या की लज्जा या पाप भार से कब मुक्त होगा? आखिर गुप्तजी बताते हैं कि हमारे ही पापों से अपने राष्ट्रपिता परलोक गये। यहाँ कवि ने गाँधीजी से जुडे तीन पक्षों को हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

2. मेरे जन-नायक की वाणी

- बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

नवीन का जन्म 1897 में हुआ। हिन्दी के वे जुझारन पत्रकार, सांसद और उच्चकोटि के वक्ता थे। 'कुंकुम' (1936), 'उर्मिला' (1958), 'रश्मिरेखा' (1951) आदि प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं। 26 अप्रैल 1960 को मृत्यु से तीन दिन पहले उन्हें पद्मभूषण से अलंकृत किया गया।

मेरे जन नायक की वाणी नवीन की चर्चित कविता है। इसमें कवि नवीन ने गाँधीवादी विचारों की महत्ता पर प्रकाश डाला है। गाँधीजी सच्चे जन नायक है और उनकी वाणी ने पूरी मानवता को प्रभावित किया है।

कवि बताते हैं कि गहन नीचे आसमान तक मेरे जन नायक की वाणी गरजी है। उस वाणी का प्रभाव अग्नि, हवा, जल, थल आदि पर पडा है। कवि लोगों से आह्वान करते हैं कि इस वाणी को सुनकर तुम्हें जागना है। यह अमृत वाणी है, तुम लोग सिंह के बच्चे हो और परतंत्रता में सब कुछ खो रहे हो। गाँधी के वचनों से प्रेरणा पाकर जागना जरूरी हो गया है। गाँधीजी के जागरण मंत्र से देश-काल के निर्माता और स्वयं लोगों को अपना भाग्य विधाता बनना है। तुम्हें इतिहास का ज्ञान है, उससे जनता को सबके सीखना है। हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान या अन्य धर्मवलंबी को मानवप्राणी मानकर जागना है।

गाँधी वाणी हिमालय तक टकारायी और दुनिया भर फैल गयी और मानव-मानव के हृदयों में गूँजी है। हिंद महासागर की लहरों में गाँधीजी की वाणी प्रतिध्वनित हुई है। गाँधी वाणी लेकर हवा चारों दिशाओं में वही है। कवि बताते हैं कि यह नव उद्‌बोधन का स्वर है और यह वाणी नवनिर्माण की प्रेरणा देती है। इसमें आत्मार्पण का पवित्र भाव और नई स्पुर्ति निहित है। अपना स्वत्व प्राप्त करना और देश को बचाने का विप्लव का रुद्र प्रभंजन इस वाणी में है।

पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, गंगा-यमुना, सागर-मधर सभी आज मेरे जन नायक के स्वर से उद्‌घोषित है। युगों के सागर मंथन से मंद्र महाध्वनि गूँज उठी है। कवि बताते हैं कि यह वाणी मेरे मानस के अमर प्राण की अमिट निशानी है।

गाँधीजी की वाणी निबिड वनों तथा घन तिमिरों को चीरते हुए आयी है। और तेजाची किरणों को लेकर यह वाणी आयी। इससे अंधेरा का भार ही हट गया। और जन गण का मन प्रसन्न हुआ। जनता के हृदय सरोवर तरंगित हुए और जनता के नयनों में नये नये रंग भी छा गए। नरा-नस में रक्त प्रवाहित होनेवाले मानव आत्माभिमानी बने।

यहाँ कवि ने गाँधीजी की वाणी का असर और गाँधीवादी मूल्यों की सहानता पर प्रकाश डाला है।

3. युगावतार गाँधी

- सोहनलाल द्विवेदी

सोहनलाल द्विवेदी हिन्दी के राष्ट्रीय कवि है। महात्मा गाँधी पर आपने कई भावपूर्ण रचनाएँ लिखी हैं, जो हिन्दी जगत में अत्यंत लोकप्रिय हुई है। इसके अतिरिक्त भारत देश, ध्वज, राष्ट्र-प्रेम और राष्ट्र नेताओं के विषय का आपकी अनेक कविताएँ हैं। द्विवेदीजी की कविता हमारी राष्ट्रीयता की परिचायक है। भैरवी, पूजागति, सेवाग्राम, प्रभाती, युगाधार, कुणाल आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

'युगावतार गाँधी' में कवि गाँधीजी को युग को प्रभावित एवं प्रेरित करनेवाले महान अवतार पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया है। कवि बताते हैं कि गाँधीजी के दो कदम जिस रास्ते पर चल पडे, करोडों लोग उसी रास्ते का पीछा किया। यानी गाँधीवादी तत्वों, मूल्यों की ओर सब

आकर्षित हो गए। गाँधीजी की दृष्टि जिस चीज़ पर पड़ी, भारतवासियों की भी दृष्टि उसी ओर खींच गयी। गाँधीजी ने जहाँ अपना सिर झुका दिया, वहीं कोटि-कोटि लोग अपना सिर झुका लिया। सत्य, अहिंसा, त्याग जैसे मूल्यों की ओर सब आकर्षित हो गये।

कवि उन कोटि चरणों, कोटि बाहुओं, कोटिरूपों का प्रणाम करते हैं। जिन्होंने गाँधीजी के रास्ते को अपनाया। गाँधीजी करोडों लोगों का प्रतीक बने, उनका कवि प्रणाम करते हैं। पूरे युग तुम्हारी हँसी देख कर ही आगे बढा और भृकुटि देखकर हट गया।

कवि की राय में गाँधीजी का बोलना युग का ही बोलना है, गाँधीजी का मौन युग का मौन है। उनका कर्म और धर्म वही युग के हैं। वे युग परिवर्तक, युग संस्थापक युग-संचालक और युगाधार रहे हैं। युग निर्माता और युग मूर्ति हैं वे। गाँधीजी ने युग-युग की रूढ़ियों को तोड कर नया सृजन करता रहा। इस तरह नवीन दृष्टि एवं नव जीवन की नींव डालने में वे समर्थ हुए।

गाँधी ने धर्म के बाह्याडंबर पर प्रहार किया, वे मानवता के मंदिर के निर्माण में व्यस्त रहे। उनकी भावना संकुचित नहीं थी। वे दिग्विजयी बनकर आगे बढते रहे। उनके रामराज की कल्पना में सामान्य लोग ही थे। कुर्बानी पर उन्होंने बल दिया। कालचक्र के रक्त से सने हुए उन्होंने मानव को दान्तव से बचा लिया। साथ ही पिसती-कराहती जगत को अभय दिया। अपने सशक्त कदम से उन्होंने कालचक्र की गति को बदला। हमेशा महाकाव्य की छाती पर करुणा का श्लोक लिखते रहे।

उनकी अडिग आस्या के सामने असत्य और मिथ्या काँपते रहते हैं। बर्बरता काँपती रहती है। उनके नेतृत्व में हुई लडाई ने ब्रिटिश साम्राज्य के सिंहासन और राजमुकुट को कँपा दिया। प्रस्तुत कविता में एक ओर गाँधीजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व पर कवि द्विवेदी ने लिखा तो दूसरी ओर वर्तमान युग में गाँधीवादी मूल्यों की जो महत्ता है उसी पर हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

4. बापू के प्रति

- सुमित्रानंदन पंत (1900-1977)

सुमित्रानंदन पंत का मूल नाम गोसाई दत्त था। सात वर्ष की आयु से कविता करनेवाले पंत ने 20 से अधिक काव्य हिन्दी को दिए, जिनमें पल्लव, गुंजन, लोकायतन (महाकाव्य) आदि महत्वपूर्ण हैं। उमर खय्याम की रूबाइयों का काव्यानुवाद भी उन्होंने किया। छायावाद के वे प्रमुख कवि हैं। 'चिदंबरा' को उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला, 1968 में। वे गाँधीजी से प्रेरित एवं प्रभावित हैं।

'बापू के प्रति' में पंत ने राष्ट्रपिता के महान व्यक्तित्व को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। कवि गाँधीजी को साधारण मानव से बढकर एक शुद्ध आत्मा के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो पुरानी भी नवीन भी है। वे रक्तहीन और मांसहीन आत्मा है। गाँधीजी को जीवन की पूर्ण इकाई के रूप में पंत देखते हैं, जिसमें भावी संस्कृति का आधार है और अंतर्लीन भी है।

नवयुग का शरीर बननेवाले मांस, रक्त अस्थि स्वयं गाँधी हैं, वे धन्य हैं। उनके त्याग से पूरी दुनिया को भोग का वर प्राप्त हुआ है। इस भस्मकाल शरीर की धूलि से जग पूर्ण होता और नवजीवन प्राप्त होता। सत्य और अहिंसा के तानों-बानों से मानवपन बनेगा।

सदियों के अंधेर में तुमने प्रकाश का सूत कांत लिया है। हे नग्न, तुमने नग्न पशुता को ढँक लिया है। तुम नव संस्कृति के पुत्र हो। तुमने छुआछूत की भावना को दूर करने का प्रयास किया। संस्कृति की विकृतियों को तुमने पवित्र बना दिया।

सभी लोग सुख की तलाश में हैं, पर तुम सत्य की तलाश करते रहे। जडता, दिसा, स्पर्धा में अहिंसा, नम्रता की चेतना तुमने भर लिया। तुमने पशुता के पंकज को मानवता का कमल बना दिया। दुनिया को पशु बल से मुक्त कर आत्मा की मुक्ति दिखाई। विद्वेष और घृणा से दूर मनुष्य को प्रेम का रास्ता सिखलाया। कवि पंत बताते हैं कि विखानुरक्त इस अनासक्त ने सर्वस्व त्याग को ही भोग बना लिया।

आगे कवि निरस्त्र समर, सत्याग्रह आदि का महत्व बताते हैं। जाति भेद पर कवि प्रहार करते हैं। सभी जीर्णताओं को गाँधीजी ने दूर करने का प्रयास किया। युग के चरखे में युग के विषय जनित विषाद को कात रहे थे। दुनिया को गाँधी ने आत्मा का निताद सुनाया। खादी से नवजीवन का पाठ पढाया। आशा, स्पृहा और आह्लाद की कला सिखायी।

जडवाद एवं जर्जरता के युग में गाँधीजी की आत्मा अवतरित हुई थी। यंत्र युग में मानव जीवन का परित्राण गाँधी ने किया। सत्य एवं अहिंसा का प्राण उन्होंने फूँक दिया। हिंसा का विरोध किया। सासारिकता से परे जीवन का सार ग्रहण किया। लौकिक जीवन जीते हुए भी वे अलौकिक ही बने रहे।

पंत बताते हैं कि विश्व के मंच पर जग जीवन के सूत्रधार के रूप में गाँधीजी अवतरित हुए थे। नर चरित्र का नवोद्धार उन्होंने किया। दुनिया को शांति मंत्र ही नहीं आध्यात्मिक पाठ भी सिखा दिया। दुनिया को एकता का पाठ उन्होंने दिखाया। गाँधीजी के मन में रामराज्य की परिकल्पना थी, जिसमें सभी की प्रगति लक्षित था। सत्य ही उसका आधारभूत साधन है।

साम्राज्यवाद के कंस ने मानवता को वंदी बनाकर रखा है। दासता की श्रृंखला को गाँधी ने तोडा। अंग्रेज़ी शासन के कारागृह से भारत को मुक्त किया। मानव आत्मा को स्वतंत्रता का रास्ता गाँधीजी ने दिखाया। शोषण के स्थान पर शांति मंत्र सुनाया। जाति-धर्म की संकुचितता से बाहर सोचने को प्रेरित किया। तमाम रूढ़ियों एवं बंधनों से इस भूमि को मुक्त करने हेतु मुक्त पुरुष के रूप में गाँधीजी आये थे। सभी मिथ्या एवं जड बंधनों से मुक्त कर सत्य एवं ईश्वर की ओर हमें गाँधी ने प्रेरित किया। सत्य की ही जय होती है। ज्ञान की जय होती है। गाँधीजी का कवि प्रणाम करते हैं। कवि पंत बताना चाहते हैं कि गाँधीवादी मूल्यों की प्रासंगिकता हर युग में, हर जनता में, हर देश में हमेशा बनी रहेगी।

5. खादी के फूल

- बच्चन

हरिवंशराय बच्चन का जन्म सन् 1907 में इलाहाबाद के ‘चक’ मुहल्ले में हुआ था। 1923 में उन्होंने पायनियर प्रेस में कचहरियों के संवाददाता के रूप में काम किया। कुछ समय ‘अभ्युदय’ के संपादकीय विभाग में काम किया। फिर अध्यायन कार्य भी किया। 1933 में पत्नी श्याम की मृत्यु होती है। 1942 में तेजी देवी से दूसरा विवाह किया। मधुशाला, मधुबाला, मधु

कलश चर्चित काव्य हैं। निशा निमंत्रण, एकांत संगीत, सतरंगिनी भी मशहूर काव्य संग्रह हैं। उनकी आत्मकथा के चार भाग हैं- 1. क्या भूलूँ क्या याद करूँ 2. नीड का निर्माण फिर 3. बसेरे से दूर 4. दशद्वार से सोपान तक। अंतिम भाग के आधार पर उन्हें सरस्वती सम्मान प्राप्त हुआ था।

'खादी के फूल' में कवि बच्चन गाँधीजी को युग द्रष्टा और सृष्टा के रूप में देखते हैं। उनके तपस्वी व्यक्तित्व को कवि रेखांकित करते हैं। कवि बताते हैं कि गाँधीजी के चेहरे पर तप का तेज है और इस दुनिया के आँगन पर सूरज की तरह वे चमक उठे। उनके जलने पर दुनिया का अंधकार मिट गया और पूरी दुनिया को उन्होंने जगा दिया।

गाँधीजी ने विश्व के तम को काटा और दलितों एवं पीडितों में नया उत्साह भर दिया। सभी के भ्रम एवं शक गायब हो गए। जीवन से मृत्यु तक गाँधीजी ने जनसेवा का व्रत ले रखा था। अपने पथ से कभी भी वे विचलित न हुए। सभी को वे अपना समझ बैठे थे। गाँधीजी का समर-मार्ग विशेष सराहनीय है। उसके सामने सारे अस्त्र-शस्त्र कुंठित एवं लुंठित है। गाँधीजी की रणभेरी से सभी गायब हो जाते हैं। अर्थात अहिंसा, सत्याग्रह एवं असहयोग के बल पर सूर्य न अस्त होनेवाले ब्रिटिश साम्राज्य को गाँधीजी परास्त किया है। इसी तरह भारत को उन्होंने मुक्त किया पराधीनता से। आखिरी पंक्तियाँ काफी प्रभावी बन पडी है-

'हे युग द्रष्टा, हे युग-स्ष्टा
पढते कैसा यह मोक्ष-मंत्र?
इस राजतंत्र के खंडहर में
उगता अभिनव भारत स्वतंत्र'

6. बापू

- दिनकर

दिनकर का जन्म सन् 1909 में बिहार के सिमरिया गाँव में हुआ। हिन्दी के अध्यापक के रूप में कई साल काम किया, बाद में भारतीय संसद में राज्य सभा के सदस्य बने। भारत सरकार ने उन्हें पद्म विभूषण की उपाधि दी। दिनकर की कविता में राष्ट्रीयता का भाव है। सामंती शोषण का विरोध भी है। महाकाव्य 'उर्वशी' केलिए ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। रेणुका, कुरुक्षेत्र, हुँकार, रश्मिरथी, परशुराम की प्रतीक्षा प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं। 'संस्कृति के चार अध्याय' भारतीय इतिहास से संबंधित ग्रंथ है। उनका देहांत 1973 में हुआ।

रामधारी सिंह दिनकर बापू को 'कालोदधि का महास्तंभ', 'आत्म के नभ का तुंग केतु', 'मर्त्य- अमर्त्य', 'स्वर्ग-पृथ्वी', 'भू-नभ का महासेतु' आदि रूपों में संबोधित करते हैं। कवि बनाते हैं कि तेरी कल्पना विराट है, उस पर जितना भी कहें तो अधूरा ही रहेगा।

कवि केलिए यह गौरव की बात है कि वे बापू के समयुगीन हैं। पर कवि लघुता को भूलकर गाँधी की गरिमा के महासिंधु में बढना कवि चाहते हैं। वही पवन तुझे धूकर मुझे भी धूता

है, यह कितना अच्छा नाता है, समय के स्मृति पट पर तू रवि सा प्रकाशमान होगा। लेकिन हमारा प्रकाश क्षणिक है। पर तू इन सबसे परे हैं। तुझे देखकर अंगार तक लजाते हैं। तुम्हारे तेज को देखकर है यह। और मेरे उद्वेलित- ज्वलित गीत सामने नहीं हो पाते हैं।

सबने जब विद्वेष और नफरत का विष ही देखा तो तू ने अमृत प्रवाह ही स्नेह का देखा है। तुमने करुणा का सागर अपनाया। मानवता का रास्ता स्वीकारा। अपदस्थ लोगों का भय तुमने दूर किया। तेरे चलने पर कुछ लोग ऐसे चौंक पडे कि तूफान उठा है। तुमने जगत की आग को बुझाने केलिए दो बूँद अमृत लेकर निकला। तुम कभी नहीं रुके, अपने निर्दिष्ट पथ पर बढते रहे, तुम्हारे पदचिह्नों के पीछे पूरा इतिहास चला।

दिनकर बताते हैं-

'बापू तू कलि का कृष्ण
निकल आया आँखों में नीर लिए
थी लाज द्रौपदी की जाती
केशव सा दौडा चीर लिए'

कवि गाँधी से प्रेरित होकर साथ चलने की बात बताते हैं। अगर साथ कोई नहीं तो भी मैं अकेले चलूँगा। आग मैं जलने केलिए मैं तैयार हूँ। कवि स्वयं प्राण त्यागने केलिए तैयार है। मानवता की कब्र पर गाँधीजी की समाधि होगी।

मानवता के उद्धार करने हेतु गाँधी आये थे। मानवता की पूँजी को उस पर पहुँचाने में वे तुले हुए हैं। मानवता पार लगी तो धरती की घायल किस्मत भी पार लगी है।

गाँधीजी की मृत्यु पर अत्यंत शोक प्रकट करते हुए कवि बताते हैं कि चालीस करोड़ लोगों के पिता चल बसे हैं। इसका मतलब चालीस करोड़ लोगों के प्राण ही चले हैं। चालीस करोड़ की आशा ही चल बसे हैं। देश की आत्मा चली है, माँ की आँखों का नूर चला है। गाँधीजी हमें छोड कहीं दूर दले हैं।

दिनकर बताते हैं कि यह लाश मनुज की नहीं, मनुष्यता के सौभाग्य विधाता की है। यह बापू की अरथी नहीं, भारतमाता की ही अरथी है। कवि श्रीराम कृष्ण, ईसा और बुद्ध से गाँधी की तुलना करते हैं।

कवि अंत में अत्यंत दुख के साथ कहते हैं कि धरती विदीर्ण हो सकती है, अंबर धीरज खो सकता है। बापू की हत्या हुई तो यहाँ किसी भी दिन कुछ भी हो सकता हैं। कवि ने कुछ पंक्तियों में गाँधी की महानता एवं पावनता को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। दूसरी ओर ऐसे निस्वार्थ मानव सेवी की दशा ऐसी है तो दुनिया का भविष्य क्या हो सकता है यह प्रश्नचिह्न भी डाला है।

7. गाँधी का सपना

- भवानीप्रसाद मिश्र

हिन्दी के नये कवियों में भवानीप्रसाद मिश्र का महत्वपूर्ण स्थान है। उसका जन्म सन् 1914 में और देहांत 1985 में हुआ था। 1951 में और देहांत 1985 में हुआ था। 1951 में 'दूसरा सप्तक'

प्रकाशित होता है, उसमें मिश्रजी पहली बार काव्य क्षेत्र में आते हैं। 'गीत फरोश', 'चकित है दुःख' आदि उनकी चर्चित रचनाएँ है। भवानीप्रसाद मिश्र की कविताओं में गाँधीवादी मूल्यों के प्रति विशेष झुकाव देखे सकते हैं।

'गाँधी का सपना' भवानीप्रसाद मिश्र की चर्चित कविता है जिसमें कवि गाँधीवादी विचारों के प्रति अपना झुकाव स्पष्ट करते हैं। पहले कवि बताते हैं कि पिछले सौ बरसों में अनेक संत एवं सुधारक पैदा हुए थे। नानक, तुकाराम, दादू दयाल, कबीर, कणय्या आदि सब समान स्तर के महात्मा हैं। उनके काम भी महान हैं। पिछले दस बारह वर्षों में गाँधीजी ने जो समाज सुधारात्मक कार्य किए हैं वे बहुत महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने जाति भेद को समाप्त करने का प्रयास किया। मानव विरोधी ताकतों का विरोध गाँधी ने किया। उन्होंने देश की एकता पर बल दिया। हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयास गाँधी ने किया। वे चाहते थे कि हिन्दू समाज में अधूत का भाव नहीं हो। फूट उपजानेवाली शक्तियों के प्रति वे सचेत रहे।

गाँधीजी ने उपवास और व्रत पर बल दिया। उनके पास लडने केलिए कोई सेना, शस्त्र नहीं था, पर मन की ताकत थी। तीय या तलवार की ताकत नहीं, जन की ताकत उनके लिए प्रमुख है। गाँधी की आशा थी कि छुआछूत का भेद मिटे। उन्होंने सोचा कि दुनिया में तमाम भेदों की जड़ें हिलेंगी। उन्हें आशा थी सारी दुनिया में समता के फूलों की फसल खिलेगी।

गाँधीजी का सपना था कि अछूत, काला-गोरा, हिन्दू-मूसलमान, मज़दूर-धनपति, निर्गुण-गुणनिधान ऐसे सारे भेद एक दिन मिट जाएँगे। कवि आखिर बताते हैं कि जब ये भेद मिटेंगे तभी गाँधी, का सपना सफल होगा। दरअसल गाँधीजी का सपना समता का सपना है, ममता का सपना है, भाई चारे का सपना है, एकता का सपना है, सर्वोपरि मानवता का सपना है।